ISSN: 2393-8900 IMPACT FACTOR : 2.7825(UIF) VOLUME - 12 | ISSUE - 11 | JULY - 2026

HISTORICITY RESEARCH JOURNAL

मध्यकालीन भारत मे सुफी अंदोलनः एक अध्ययन

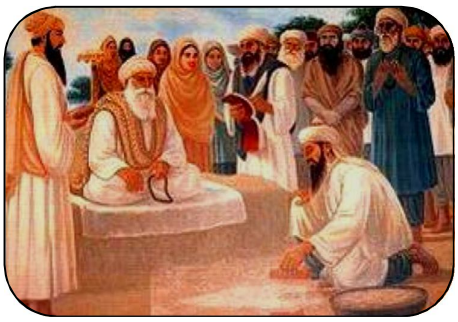

विजय पुंडलिक साळुंखे
शोधकर्ता, सहाय्यक प्राध्यापक,
प्रताप कॉलेज, अमळनेर जिला जलगॉव, महाराष्ट्र.

प्रस्तावना

11 वी और 12 वी सदी का काल मे इस्लाम मे सुफीवाद के रुप मे रहस्यवादी अंदोलन प्रारंभ हुआ। सुफी संत शरीयत मे विश्वास रखने के बावजुद कट्टरता से कोसों दुर थे। सुफीवाद ने विभिन्न धर्मा के बिच सामंजस्य का विचार देकर भारत मे मुसलमानो के प्रति हिंदुओ के हृदय मे कटुता कों दुर करने का प्रयास किया। इन्होने तुर्की शासन के सामाजिक आधार को दुर करने का कार्य किया।

भारत मे सुफी संतो का प्रवेश तुर्को के शासन स्थापना से काफी पुर्व ही हो गया था। दिल्ली सल्तनत कि स्थापना के पश्चात विभीन्न इस्लामी देशो से बडी संख्या मे सुफी भारत मे आए और विभिन्न प्रांतो में बंस गए। भारत आने के पश्चात सुफी संतो पर हिंदू धर्म का भी प्रभाव पडा तथा हिंदू धर्म ने भी इनसे बहूत कुछ ग्रहन किया। ईश्वर के प्रति प्रेम, अहिंसा, तप, संसारिक वस्तुओं का त्याग जैसी विषेशतओंको सुफी संतो ने विभिन्न भारतीय धर्मो से ग्रहण किया। इसके अतिरीक्त हिंदूओं कों भी सुफी संप्रदाय मे शामील करने के उद्देश्य से इन्होने यहा के जन जीवन को प्रभावीत करने वाले कई रीति–रिवाजों को स्विकार कर लिया।

'सुफी' शब्द के मुल स्त्रोत के बारे मे विद्वानो में काफीं मतभेद है। कुछ इतिहासविद इसे ग्रिक शब्द 'सोफीया' से बना हुआ मानते है। इसका अर्थ 'ज्ञान' है। कुछ इतिहासविदो ने यह तर्क दिया है कि, जो व्यक्ती पवित्र थे वह 'सुफी' कहलाए। कुछ इतिहासविदों का यह कहना है की, "मदीना मे मुहम्मद साहब द्वारा बनाई गई मस्जिद के बाहर 'सुफ्फा' अर्थात चबुतरे पर जिन गृहहिन व्यक्तीयों ने शरण ली थी तथा जो पवित्र जीवन बिताते हूए ईश्वर की आराधना मे लीन रहते थे वह सुफी कहलाए।"[1] अर्थात इससे यह तो तय है की, जो लोक ईश्वर कि आराधना मे लीन थे वह सुफी कहलाए। 'सुफ्फ' का अर्थ दिल कि सफाई भी होता है। इन लोगो ने अपनी विरासत के रुप मे लोगो मे अध्यात्मिक ज्ञान प्रसार का कार्य किय

अबु– नस्त्र–अल– सिराज का कहना है की, 'सुफी' शब्द 'सुफ' अर्थात 'उन' से निकला है। जिसका अर्थ है की, 'कंब्बल जैसा मोटा कपडा' और इस कंबल जैसा मोटा कपडा जो लोग पहनते थे वह सुफी कहलाए। मुहम्मंद साहब के बाद जो सन्यासी उन का कंबल ओढकर घुमा करते थे वह सुफी कहलायें। अधिकांश विद्वान इस अंतीम मत का सर्मथन करते है। परंतु 'ग्रिक' शब्द 'सोफीया' (ज्ञान) से यह शब्द बना है। इस कथन मे भी कुछ यर्थाथता दिखाई देती है। क्यों कीं, सुफी अनुभव सिद्ध ज्ञान कों ही महत्व देते है।[2] इसलिए भारत मे जिन सुफीयो अपने मत का प्रचार कीया उनमे से अधिकतर संतो ने ऐकेश्वरवाद का प्रचार कीया। भारत मे आने वाले प्रथम ज्ञात सुफी अल्– हुजवीरी अथवा दाराजंग बक्ष थे। इन्होंने कश्फ– उल– महजुब नामक ग्रंथ की रचना की।[3] इसे सुफी मत का सबसे प्रमाणिक ग्रंथ माना जाता है। इस ग्रंथ सरलीकरण

से इतिहासविदो ने कुछ तथ्यो को सामने सखा, और इससे मालुम होता है की, भारत मे आने वाले सुफी दो प्रकार के थे। एक 'बेशरा' और दुसरा 'बाशरा' यानी जो सुफी संत सुफी संत 'शरीयत' (इस्लामी कानून) मे विश्वास रखते वह 'बेशरा' कहलाए। और जो सुफी संत 'शरीयत' मे विश्वास नही रखते थे वह 'बाशरा' कहलाए। 'सुफी' परंपरा में तीन पद काफी महत्वपूर्ण मानें जाते है। और इसकी चर्चा हमे अनेक ग्रंथो से मिलती है। पहला पद पिरः–अर्थात गुरू का हैं। सुफी परंपरा मे गुरू को सर्वाधिक महत्ता प्रदान की गई है। हमे मध्यकालीन इतिहास के पारसी स्त्रोतो से इसकी जानकारी मिलती है। की सुफी संतो ने भारत मे आकर अपने शिष्यो की परंपराए तैयार की, और इनके यह शिष्य इस परंपरा को निभाते रहे। और अपनी सांस्कृतीक विरासत इन शिष्यो ने भी एक पिढी से दुसरी पिढी तक निभाते रहे। इसके बाद का दुसरा महत्वपूर्ण पद सुफीयों मे मुरीद[4] का था। मुरीद अर्थात शिष्य होता है। मध्यकालीन भारतीय इतिहास के स्त्रोत और सुफी मौखीक परंपराए। इन सुफीयो के के 'मसनवी' काव्यो से प्रतीत होती है। सुफी परंपराओंमे तीसरा महत्वपूर्ण पद था 'वली'[5] जिसे उत्तराधिकारी माना जाता था। 'वली' इस शब्द का बहूवचन 'औलीया' होता है। अर्थात ईश्वर का मित्र यानी की, जो सुफी अल्लाह के नजदीक होने का दावा करता था और उनसे मिली बरकत से करामात करने की शक्ती रखता था। हमे मध्यकालीन इतिहास के स्त्रोत के रुप मे जो मुरक्का–ए– दिल्ली है इसमे से कुछ तथ्य हमारे सामने उभरकर आते है। 18 वी शताब्दी मे दख्खन के दरगाह कुली खा शेख ने शेख नासिरुद्दीन चिराग–ए–देहली की दरगाह के बारे मे मुरक्का–ए–देहली (दिल्ली की अलबम) के बारे मे लिखा की–"शेख सिर्फ देहली के ही चिराग नही अपितू सारे मुल्क के चिराग है। लोगो का हुजूम यहा आता है और खासतौरसे इतवार के रोज। दीवाली के महीने मे दिल्ली की सारी आबादी दरगाह पर उमड आती है और हौज के पास तंबु गाडकर वह कई दिनो तक यहा रहते है। पुराने रोंगों को ठिक कराने कें लिए वे यहा नहातें है। हिंदू और मुसलमान एक ही भावना से यहॉ आतें है और पेंड कि छॉव मे हॅसी–खुशी समय बिताते है।"[6] इसका मतलब यह है की, सुफी मान्यताए किसी एक धर्म से जुडी हूई नही थी और न ही किसी भी धर्म का प्रचार करती थी। लोगो की श्रद्धा बने इन सुफी संतो ने प्रेम का प्रचार करके लोगो मे ऐकेश्वरवाद को उजागर करने का कार्य कीया।

विश्व के भिन्न– भिन्न भागो मे भिन्न– भिन्न धर्मावलंम्बो रहते है, लेकीन सभी व्यक्ती एक सर्वशक्तीमान ईश्वर कि उपासना करते है, हालाकी उनके साधन भिन्न–भिन्न है। आगे चलकर इन धर्मा से भी अनेक मत या संप्रदाय उपन्न हों जाते है, जो अपने आपको एक धर्म के रुप मे प्रतिष्ठीत कर लेते है। ऐसा ही एक धर्म सुफी धर्म है जो 'इस्लाम' से उत्पन्न हुआ है।[7] सुफी मत को बहुत से सुफीयो ने प्राचीन धर्म का माना है, और बताया है की, इसके मुल प्रवर्तक स्वयं 'आदम' या आदीम पुरुष थे। कुछ सुफी लोग इसके प्रथम प्रचारक हजरत मुहम्मद साहब कों मानते है, और कुछ लोग इसके मुल सिद्धांतो का 'कुरान शरीफ' मे अभाव पाकर इसके प्रचार का श्रेय अली या किसी ऐसे महापुरुष को देते है जो पैगंबर का साथी रह चुका हो। इस मत के सिद्धान्त कुरान शरीफ मे न होने के कारण, बहुत से कट्टर मुसलमानो ने इसे विधर्मीयो का मत ठहराते हुऐ इसकी निंदा कि है। सरदार इकबाल अली शहा ने लिखा है की, सुफी शब्द महंम्मद साहब के देहांन्त के बाद दो सौ वर्ष बाद सत्ता मे आया प्रतीत होता है। 'सुफी' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग 869 ई. मे बसरा (अरब) निवासी जिहाज द्वारा कीया गया था।[8] परंतु जामी के अनुसार इस शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग 800 ई से पुर्व कुफा के अबु हाशिम के लिए हुआ था।[9] वास्तव मे इस शब्द का 8 वी सदी के पुर्वार्द्ध मे हुआ प्रतित होता है। डॉ ताराचंद सुफी मत का उद्‌गम कुरान, महंम्मद साहब का जीवन, ईसाई धर्म, हिंदु एवं बौद्ध धर्म, और झरत्रुष्ठ धर्म मानते है। और यह भी मानते है की, सुफी मत कोई सरल चिज नही थी। वह एक नदी की तरह थी जिसमे कई छोटी–छोटी नदीयॉ कई स्थानो पर मिल गई।[10] प्रो. डेविस का विचार है की, सुफी मत एक प्यार का धर्म था, जिसकें कट्टर और संकिर्ण सिद्धान्त थे। इसमे किसी स्वर्ग नरक का स्थान न था। लोगों के ह्रदय ईश्वर से मिल जाते है। प्रो. डी. के. भार्गव का कथन है की सुफीमत पुर्व और पश्चिम के अध्यात्मिक प्रेम का मिलाप था। लेकीन प्रो. भार्गव ने पश्चिम के मिलाप की जो बात कही है वह थोडी संदेह पैदा कर देती है। क्यौं की, अध्यात्मिक प्रेम न तो पश्चिम की विरासत थी न ही कोई अध्यात्मिक क्रियाकलाप पश्चिम मे होता था। इसलीए प्रो. भार्गव के मत को स्विकार करना एक जटील समस्या है।

सुफीयो की उत्पत्ति इस्लाम के 'वहादत–उल–वुजुद' सिद्धान्त से हुई है। इसका अर्थ है 'ईश्वर एक है' और वह संसार की सब चिजो के पिछे है।[11] ईश्वर के शिवाय और किसी कि सत्ता नही। ईश्वर से मिलाप तभी होता है, जब मनुष्य के भाव ईश्वर के संपर्क मे आते है और वह निवृति मार्ग अपनाता है। वहादत –उल –वुजुद का सिद्धान्त शेख मुही –उद्दीन इब्न –उल– अरनी (1165 – 1240) ने दिया है। इस सिद्धान्त को भारत के सुफीयों ने मान्यता दी।[12] ईश्वर से मिलने के लिए सुफीयों कों कई स्थितीओं से गुजरना पडता था। ईश्वर से मिलने के लिए सुफी लोग संसार की सभी चिजे भुल जाते थे। न वे राजसत्ता से वास्ता रखते थे न ही संसारिक वस्तुओंसे। सुफीयों का लक्ष ईश्वर से मिलना और मनुष्य मात्र की सेवा करना था। उन्होंने हिंदूओ विशेषकर हिंदूओं के निम्न वर्ग के सामने इस्लाम की समता का संदेश रखा। उन्होने लोगो की भाषाओं को सीखा, उनके धर्म और रिवाजों का मतलब। हिंदूओ के साथ संपर्क के लिए उर्दु भाषा की निंव रखी। हिंदूओ को अपनी और आकर्षित करने के लिए उन्होंने हिंदू साधूओंके जैसा वेष अपनाया, और रस्मो रिवाज भी अपनाए।

सुफीवाद के इतिहास में अबु याजीद उल बिस्तानी नामक सुफी का महत्वपुर्ण स्थान है। उसने 'तवस्सुफ' (अपने कों मानसिक इच्छाओंसे उपर करके हर चिज मे भगवान का रुप देखतां) चरम आनंद और जगद्व्यापी ईश्वर कों मानकर एक नई धारा तैयार की। उसमे कहा है की, "मैं ईश्वर हूँ, अतः मेरी उपासना करो।"[13] उलेमाओं ने इसका विरोध किया और उसे देश से निकाल दिया। 857 ई. मे उनका देहांन्त हो गया। उनके पन्थ का नाम 'तैफुरी' पडा जिसका फारस मे कांफी प्रचार हुआ। एक अन्य सुफी शेख जुनैद ने 'तवस्सुफ' के पुराने विचारो का नये विचारो के साथ समन्वय करने का प्रयास किया। 1910 मे उनकी मृत्यू के बाद मन्सूर नामक संत ने उनके विचारो का प्रचार किया। हुसेन –इन– मन्सुर अल– हल्लाल नामक संत ने जो तवस्सुफ का प्रकांड पंडीत और तत्वज्ञानी था। फारस, खुरासान, तुर्कीस्थान, और उत्तरी– पश्चिमी भारत का भ्रमण किया, और घोषित किया की मानव ईश्वर का आवतार हो सकता है। ईश्वर कि अनुभुति प्राप्त करके अनल–हक (मैं ईश्वर हुँ) का उद्घोष कीया। फलतः उसे न्यायालय ने फासी कि सजा दें दीं। आगे चलकर इब्न– अल – आरबी और आब्दुल करीम जीलि ने इनकी विचारधॉरा का प्रचार किया।[14] उलेमा लोग सुफी मत का विरोध करते थे, क्यों की सुफी मत इस्लाम के अनुकूल नही था। अतः अबु हमीद मुहम्मद अल् गजाली नामक सुफी संत ने सुफीवाद को इस्लाम के अनुकूल करके उसके महत्व को बढा दियां।[15] 11 वी सदी के अंत और 12 वी सदी के आरंभ तक (1212 ई. तक) उसने बगदाद और खुरासान मे अपने मत का प्रचार किया।

मध्यकालीन सुफी संतो ने सुफीमत का प्रचार करने के लिए अपनी 'खानकाह' निकाली थी। मुस्लिम सुफीमत के काम–काज का केन्द्र यही खानकाहे थी। दुर–दुर से लोग अपनी अध्यात्मिक उन्नती के लिए वहा आते थे। कई खानकाहो मे यात्रीयों और अनुयायिओं के रहने खाने का बंदोबस्त था। शुरु–शुरु में खानकाहो मे रहने वाले लोग स्थानिय लोगो द्वारा दीए गये दान पर निर्भर थे। परंतु धिरे–धिर सुफीओं की लोकप्रियता के कारण पर्याप्त धन आ गया, जिनसे वह लोगो को खिला सकते थे और उनके रहने का भी प्रबंध कर सकते थे। सुफीयों का इतना आदर और सन्मान था की, ज बवे मर भी जाते थे तो उनकी कब्रो की पुजा होती थी, और उन्हे पवित्र स्थान समझाा जाता था।

सुफीयों ने इस्लाम की कट्टरता कों तिलांजली देकर रहस्यवाद कि अंन्तरीक गहराई से समझौता कर लिया। जिस प्रकार धार्मिक विचारको ने कुराण–शरीफ और इजमा के आधार पर अपने सिद्धान्तों की व्याख्या की है, उसी प्रकार सुफीयोंने भी अपना रास्ता कुरान–शरीफ और सुन्नत के भितर से ही निकाला। परंतु अनेक मार्ग हमेशा शरीयत सें मेल नही खांते थे। विकास काल सेही सुफी लोग एकांन्तवाद और पवित्र जीवन पर जोर देते थे। वे ईश्वर के प्रेम मे मग्न रहते थे। वे इस्लाम का अनुकरन तो करते थे परंन्तु कर्मकांण्ड के विरोधी थे। धिरे–धिरे उनमे स्वतंत्र्य विचारधारा का विकास हुआं। वे इस्लाम कि शिक्षाओं को अपने अनुभव और तर्क की कसोटी पर कसनें लगे। उस समय बसरा एक महत्वपूर्ण स्थान बन गया। भिन्न– भिन्न स्थानो के सुफी वहा आकर अपने रहस्यो की चर्चा करने लगे। सुफी मत का इस्लाम की कई बातो से मतभेद है, परंन्तु प्रायः सभी सुफी मुसलमान थे और सिद्धांन्तो का विवेचन करते समय इस्लाम कों अपनी आखों से ओंझल नही होने देते थे। जहॉ कही उन्हे ऐसा लगता था की, उनके कथन या आचरण के साथ , इस्लाम का मेल नही खॉता, वहां वे कुराण और हदीस का सहारा लेते थे। सुफीयोकों अपने स्वतंत्र्य विचार प्रकट करने के कारण कई यातनाए सहनी पडी, परंन्तु वे पिछे नही हटे। सभी विरोधो का होते हुए भी सुफी मत इस्लाम की और उन्मुख रहा।

सुफी दर्शन यवं सिद्धांन्तः–

जिस समय सुफी धर्म का विकास हुआ उस समय भारत मे वेदांन्त धर्म यवं दर्शन और युरोप मे धार्मिक पुनर्जागरण की लहर फैल रही थी। अतः सुफी दर्शन यवं सिद्धान्तो पर समकालीन घटनाओं का प्रभाव पडा। सुफी धर्म में प्रेम को बहुत महत्व दिया जाता है। सुफी लोग एक ईश्वर को मानते है। यह लोग ईश्वर को 'प्रियतमा' का रुप मानते है, जिसकी खोज मे अम्मा रुपी 'प्रियतम' समस्त सांसारिक सुखो का त्याग कर चला जाता है। साधक को चरम लक्ष कि प्राप्ती के लिये 'इश्क' रुपी मार्ग का अनुसरण करना पडता है। इनका विश्वास है की ईश्वर अमर सौंन्दर्य है, तथा उसकी प्राप्ती प्रेम संगीत से की जा सकती है। अतः इस धर्म मे सौंन्दर्य और संगीत को अधिक महत्व दिया जाता है।

सुफी लोग लौकिक प्रेम मे पड़कर ईश्वरीय–प्रेम (ईश्क–ए–खुदा) का अनुभव और तसव्वुर एवं सौन्दर्य–पुजा (हुस्नपरस्ती) में ईश्वर के सौन्दर्य (अल्लाह के जमाल) का साक्षात्कार करते हैं। अतः प्रेम के मार्ग का अनुसरण करके विभिन्न अवस्थाओं को पार करके चरम लक्ष की प्राप्ती करते हैं[16]। सुफीयों की मान्यता है की, ईश्वर निर्गुण हैं। उनकी यह भी मान्यता हैं कीं, मनुष्योंमें तीन प्रवृत्तियॉ होतीं हैं। शारिरीक, बौद्धीक, और आत्मिक। आत्मिक प्रवृत्ति को शुद्ध रखने से व्यक्ति उच्च व पवित्र बन जाता हैं, लेकिन यह कार्य गुरु के पथ–प्रदर्शन सें ही संभव हैं। गुरुओं ने सुफीयों को कुछ हिदायते दि हैं जो कुछ इस प्रकार हैं। स्वभवतः मनुष्य कामी, क्रोधी, लालची तथा बन्धनयुक्त होता हैं। यह मनुष्य की 'उबूदियत' अवस्था हैं। 'उबूदियत' की अवस्था में साधक का यह कर्तव्य हैं किं वह अपने पापों (गुनाहों) के लिए पछतावा (तौबा) करे और विश्वास (ईमान) अर्जित करें। तत्पश्चात उसको शरीयत के अनुसार नमाज, रोजा, तोहिद, जकात और हज का पालन करना चाईये ताकिं दुर्गुणों का नाश हो सकें। ज बवह पुर्णतः अनुशासित हो जाता है तब वह 'तरिकत' अवस्था मे प्रवेश करता हैं। 'तरीकत' मे साधक को गुरु (शेख अथवा पिर) कि आवश्यकता होती है, जो उसकी आचरण शुद्धि तथा प्रवृत्तीयों का संयम रखने का आदेश देता हैं, जिससे उसे ईश्वर की अनुभुति हो सकें। शिष्य को गुरु के प्रति समर्पित होना चाहीयें, क्योंकि गुरु पृथ्वी पर ईश्वर का प्रतिनिधि हैं। गुरु की प्रत्येक आज्ञा शिरोधार्य करनी चाहीये, तथा गुरु के आदेशानुसार उसे संस्मरण (जिक्र) मे भाग लेना चाहिये। जिक्र दो है– जिक्र अली (चिल्लाकर मंन्त्रोच्चारण करना) और जिक्र खफी– (ह्रदय की एकाग्रता)। दोनो का मंत्र 'ला–इल्लाह इल्लल्लाह' (खुदा एक है) ही हैं। जिक्र के साथ 'मुराकेबा' नामक क्रिया भी कि जाती हैं, जिसमे ह्रदय की व्याकुलता को दुर करने के लिये कुरान का पाठ, रोजा और भोजन एकत्र करना पडता हैं। 'मारिफत कि अवस्था दयालुता और कृपालुता से प्राप्त होती हैं। इससे मस्तिष्क दैवीज्ञान से प्रकाशित हो उठता हैं, और 'हकिकत' कि अवस्था में साधक को सात्विक ज्ञान कि प्राप्ती होती हैं। 'फना' की अवस्था मे सांसरिक प्रवृत्तियों का विनाश हो जाता हैं और साधक ईश्वरोन्मुख हो जाता हैं। साधक कि अंतिम अवस्था बका कहलाती हैं, जिसमे साधक (प्रेमी) और प्रियतमा (ईश्वर) के बिच कि दूरी समाप्त हो जाती हैं और दोंनों एकरुप हो जाते हैं। साधक स्वयं ईश्वर हो जाता हैं (अनलहक) और इस अवस्था का कभी अंत नही होता।[17] यह सुफी दर्शन लेकर सुफीमत के अनुयाई भारत में पहूंचे।

भारत मे सुफी मतः–

महंमद गझनी के पंजाब विजय करने के बाद कई सुफी संत भारत मे आये। इनमे सबसे पहला सुफी संत शेख ईस्माईल था जो लाहोर आया था इसके तथ्य हमे बरनी के तहकीक– ए– हिंद से मिलते है। लेकीन शेख ईस्माईल को जादा समय न मिल सका इसलिए शेख का सुफीमत का प्रचार कम दिखाई देता हैं। इसके बाद 'शेख अली बीन उस्मान अल् हजवैरी' था। वह दाता जंग बख्श नाम से विख्यात हैं। उनका मकबरा लाहोर मे है। उन्होने लिखी हुई पुस्तक का नाम कशफुल महजूब था। उस समय के एक और सुफी संत का नाम 'सैय्यद अहंमद सखी सर्वर' था।[18] उसको 'लाखदाता'कहा जाता था। उनकी मृत्यू 1280 मे शहाकोट मे हुई थी वहा उनके अनुयायीओने उनकी मजार बना दी।

11 वी सदी से 15 वी सदी तक सुफी मत के प्रचारक धिरे–धिरे भारत मे आकर बसने लगे, और इस काल मे भारत मे कई नये संप्रदाय और अंदोलन प्रारंभ हुए जो कीं, हिंदू धर्म और इस्लाम मध्य रास्ता बनाते थे। उनमे से चिश्ती, सुहरावर्दी, फिदौसी, कादीरी, और नक्षाबंदी सिलसिले महत्वपुर्ण माने जाते हैं। 13 वी सदी

तक भारत मे लगभग 14 सुफी सिलसिलो का अस्तित्व था।[19] इन सुफीयों ने संपुर्ण भारत में अपने विचारो का प्रचार कीया।

सुफीयों कें दो सिलसिले भारत मे जम गए। इनसे से एक चिश्ती और दुसरा सुहरावर्दी सिलसिला था। चिश्ती सिलसिले कीं स्थापना ख्वॉजा अब्दुल चिश्ती ने हेरात मे की थी। इस सिलसिले कों ख्वॉजा मुईनउद्दीन चिश्ती (1141–1236) भारत मे लाए। ख्वॉजा मुईनउद्दीन बचपन सें ही ईश्वर के प्रति श्रद्धा रखते थे, इसलिए उन्होने बचपन मे घर छोडकर पवित्र स्थानो का भ्रमण करना आरंभ कीया। समरकंद, बगदाद, मक्का आदी पवित्र स्थानो कीं यात्रा करने के पश्चात 1161 ई. मे वह गझनी लाहोर आए, और अंन्त मे आजमेर मे उन्होने अपना प्रधान केंद्र बना लिया।[20] उन्होंने निम्न जाती के लोगो मे अधिकतर कार्य कीया, उनका विश्वास था की, उच्च कोटी की भक्ती लोगों की सेवा है। उनके विचारो की वजह से उन्हे कई अनुयाई मिले और इन अनुयायीयोंने उनके बाद चिश्ती सिलसिले को लोकप्रिय बनाने का कार्य कीया।

ख्वॉजा मुईनउद्दीन कें कई शिष्य और अनुयायी थे। उनमे से शेख हमीदउद्दीन नागोरी औंर शेख कुतबुद्दीन बख्तियार काकी प्रमुख शिष्य थें। शेख काकी इल्तुतमिश के समय मे भारत में आए, और उन्होंने सुल्तान को बहुत प्रभावित कीया। सुल्तान ने शेख काकी को अपने महल के पास रहने की प्रार्थना की, परंतु शेख काकी ने वह प्रार्थना स्विकार नही की, और शहर के बाहर खानकाह मे रहने चले गए। सुल्तान ने उन्हे शेख–उल– इस्लाम का पद दिया, परंतु शेख काकी ने इस पद को लेने से इन्कार कर दिया।[21] यद्यपी उन्होने राजनिती मे कोई रुची नही ली, बाद मे उनकी खानकाह मे सब प्रकार के लोगो ने आना शुरु कर दिया। उनका जीवन पवित्र और साधा था। 15 नोव्हेंबर 1233 ई. मे उनकी मृत्यू हो गई। उनको लोग प्यार से 'काका साहब' पुकारते थे।

काका साहब का शिष्य शेख फरीदउद्दीन मसउद गंजेशकर था (1175– 1265) वह 'बाबा फरीद शंकरगंज' के नाम से विख्यात है। वह अफगणिस्तान के राजवंश से था। उसका दादा मुल्तान आया था, औंर वहा बस गया। उसने हॉसी और अजोधन मे कार्य कीया।[22] उसके धार्मिक कार्यो के कारण चिश्ती सिलसिले को भारत मे लोकप्रियता प्राप्त हुई। उसने अपने कई शिष्यो को प्रशिक्षण दिया, और खानकाहे बनाई। उनका यह विश्वास था की सम्राटो और अमिरो सें दुर रहना चाईए, क्योंकी जो दरवेश उनसे मित्रता करता हैं। अंत मे उसको दुख होता हैं। उसने निम्न वर्ग और दुखींयों के लिए प्यार और उदारता के द्वार खोल दिए। उनकी वाणी में समाज और राजनिती कें कटू यतार्थ की ध्वनी सुनाई देती थी। उनके बाद उनके मुरीद हजरत शेख निजामुद्दीन औलीया उनके उत्तराधिकारी बने। वह 1225 ई में दिल्ली मे आए, और वहा उन्होने लगभग 60 वर्ष काम कीया। इनके काल में दिल्ली सल्तनत के कई सुल्तान बने परंतु औलिया साहब किसी भी कचहरी अथवा दरबार में न गए। "उन्होने अल्लाउद्दीन खिलजी से मिलने से इन्कार कर दिया। उस समय उलेमा का सुल्तानो पर अधिकार था और औलीया साहब सुल्तानो से भी इसलिए नही मिलते थे ताकि, उनका कट्टर उलेमा से झगडा ना हो जाए।"[23] औलीया साहब कट्टर उलेमा से घृणा करतें थें परंतु साधारण जनता उनकी प्रशंसा करती थी। लोग उनको 'मेहबुब इलाही' के नाम से पुकारते थे। उनके अनुयाई सारे भारत मे फैल गए। उनके व्यक्तित्व ने भारत मे चिश्ती सिलसिले को लोकप्रिय बनाया। मुहम्मद तुघलक इनका प्रिय शिष्य था। 1325 ई. मे उनकी मृत्यू के बाद उनके मुरीदो ने चिश्ती सिलसिले का प्रचार करने का कार्य कीया और उनके शिष्य पुरे भारत मे फैल गए। इन शिष्यों मे शेख नासिरुद्दीन मुहंम्मद का नाम आता है। उन्हे 'चिराग–ए– दिल्ली' भी कहा जाता था। 25 वर्ष की आयुं मे वह शेख निजामुद्दीन औलीया से मिलने दिल्ली आए, और उनके शिष्य बन गए। उसने अपने जीवन को औलीया साहब के उपदेशों के अनुसार बनाया, और बड़ा साधा जीवन व्यतीत कीया। "सुल्तान कुतबुद्दीन मुबारक ने शेख महंमुद को मिरी की मस्जिद मे आकर नमाज पढाने को कहा, चु कि उसने इनकार कर दिया इसलिए उनके सन्मुख बहुत बड़ी मुसिबत खड़ी हो गई"[24] परन्तु कुतबुद्दीन की मृत्यू हो जाने के कारण वह बच गए। बाद मे उन्होने अपने शिष्यो को प्रशिक्षण देकर चिश्ती मत का भारत मे प्रचार कीया।

'शेख हमीदउद्दीन नगौरी ने राजस्थान के नगौर में चिश्ती सिलसिले का एक केंद्र बनाया। वहा वे साधारण राजस्थानी खेतिहर के समान रहें। शेख नगौरी उन लोगो से दुर रहें, जिनका संम्बंध सरकार से

था।'[25] उन्होंने अपने उपदेशों के लिए हिंदवी भाषा अपनाई और उसके उत्तराधिकारीयोंने फारसी मे लिखीं गई कई पुस्तकों का हिंदवी भाषा में अनुवाद कीया। उन्होंने कई पद लिखे है जो पद हिंदवी भाषा मे लिखे गए है।

चिश्ती सिलसिले का कार्य पुरे भारतवर्ष में फैलाने का कार्य इस मत के मुरीदो ने कीया। बंगाल मे सिराजउद्दीन अली सिराज ने चलाया। उसका केंद्र गौर मे था। उसने भी अपने मुरीदों को तैयार कीया। उसका एक मुरीद नुर–कुतुब–ए–आलम था उसने पंडुआ मे अपनी खानकाह खोली, और पुरे बंगाल मे चिश्ती सिलसिले को फैलाने का कार्य कीया। चिश्ती सिलसिले के एक संत बाबा फरीद का शिष्य शेख अल्लाउद्दीन अली अहंम्मद साबीर पानिपत मे आए और सुफीमत के प्रचार का कार्य कीया। उनके एक शिष्य 'अहंमद बिन अब्दुलहक' अपनी खानकाह 'रुदौली' (उत्तर प्रदेश) मे बनाई और उत्तरी प्रांत और लखनौ के आसपास चिश्ती मत का प्रचार कीया। शेख अब्दुल कुद्दुस ने अपनी खानकाह सहारनपूर जिले के गंगोह मे बनाई और अपने अनुयायी तैयार करके चिश्ती मत का प्रसार कीया। चिश्ती मत के एक संत सैय्यद अहंमद गेसुदराज ने दक्षिणी भारत मे चिश्ती सिलसिले को लोकप्रिय बनाने का कार्य कीय, और गुलबर्गा मे अपनी खानकाह खोली।[26] चिश्ती संतो को सुल्तान मुहंम्मद तुघलक ने विरोध किया और उन संतो नें दक्षिणी भारत के दौलताबाद मे खानकाहे खोली, और सुफी मत का प्रचार कीया।

मुघलों कें शासनकाल में चिश्ती सिलसिलें का पहलें जैसा प्रभाव नही रहा। क्योंकि उसमे उस कालमे निजामउद्दीन औलीया जैंसा कोई धार्मिक नेता नही था। उनसे कई मुसलमान नाराज इस बात पर हो गए क्यों कि उन्होंने एक ईश्वर के सिद्धान्त का पुरी तरह अनुकरण नही किया। चुं कि वे राज्य से अलग रहते थे इसलिए, लोंग उनकी तरफ उदासिन हो गए।

चिश्ती सिलसिले का एक संत 'शेख सलीम' था, जिसका केंद्र फतेहपूर सिकरी मे था। आजतक ऐसी मौखीक परंपराए है की, जहॉगीर का जन्म शेख सलीम के आशीर्वाद से हुआ। अकबर बादशहा शेख सलीम की 'तकलीद' करता था। अकबर के जीवनकाल में शेख का देहांन्त हो गया। उसे फतेहपूर सिकरी मे दफनाया गया, और वहा शेख सलीम कि मजार बना दी गई।[27] बाद मे शेख के पुत्र और पौत्र मुघल सरकार के कर्मचारी बन गए। उत्तरी भारत मे 'शेख निजामउद्दीन फारुखी' ने चिश्ती सिलसिले का प्रचार कीया। उसने 'थानेश्वर' में अपनी खानकाह खोली। उसने जहॉगीर कें पुत्र खुसरो को आशीर्वाद दिया। इसलिए जहॉगीर ने उसे राज्य से निकाल दिया। जहॉगीर कें बाद शहाजहॉ कें काल मे चिश्ती सिलसिले का प्रभाव बढ गया। चिश्ती संतो ने यह घोषणा की कीं वे मुघल सम्राट और मुघल सम्राज्य के समर्थक थे। औरंगजेब कें शासनकाल में चिश्ती सिलसिले के एक संप्रदाय ने जिसका नेता 'शहा कलीमुल्ला जहारवादी' था इस मत का प्रचार कीया कि सुन्नी मुसलमानो, शिया मुसलमानो और हिंदूओं को मिल– जुलकर भारत में रहना चाईए। इस प्रकार ऐकेश्वरवाद का प्रचार करके हिंदू और मुसलमानो कें मध्य बढती दुरी को कम करने का प्रयास इन चिश्ती संतों ने किया।

भारतवर्ष मे आने वाला दुसरा सुफी सिलसिला सुहरावर्दी था। सुहरावर्दी सिलसिले की स्थापना शेख शहाबद्दीन सुहरावर्दी (1145–1234) ने की। उसने अपने शिष्यो कों भारत भेजा और वे भारत कें उत्तर–पश्चिम भागों में बस गए। उनमे से एक बहाउद्दीन जकारीया सुहरावर्दी(1182 ते 1263) था। उसने मुल्तान में खानकाह बनई और वहा उसने लगभग 50 वर्षें काम किया। वह निर्धनता कें जीवन में विश्वास नहि रखता था। उसने अपना जीवन संतुलित ढंग से व्यतीत कीया। उसका विचार था कि, इस्लाम कें सभीं रिवाज सख्ती से माने जाए।उसने हिंदूओ के नमस्कार के तरीकों का विरोध किया। उसने देश कि राजनिती में पुरा–पुरा हिस्सा लिया, और सुल्तानो और अमिरों सें मेल–जोल स्थापित किया। इल्तुतमिश की कुबाचा के साथ लढाई में उसने इल्तुतमिश का पक्ष लिया, इसलिए सुल्तान ने उसे 'शेख–उल–इस्लाम' कि उपाधी दी। वह साधारण लोगों से नही मिलता था।[28] इसका परिणाम यह हुआ कि, बडी संख्या में अमिर लोग उसके अनुयायी बन गए। उसे बहुत से उपहार अमिर और सुल्तान से मिले। इसलिए यह संत बडा धनवान बन गया। इस धन का इस्तमाल उसने सुहरावर्दी मत के प्रचार के लिए किया। शहाबद्दीन सुहरावर्दी के देहांन्त कें बाद सुहरावर्दी सिलसिला दों भागो में बट गया। एक का कार्यक्षेत्र मुल्तान मे था, और दुसरे का सिंध में उच्छ। "शेख जकारीया सुहरावर्दी का एक पुत्र बद्र–उद्दीन आरिफ मुल्तान शाखा का मुखिया बना, और जलालउद्दीन सुरख बुखारी एच्छ शाखा का अध्यक्ष बना। बद्र–उद्दीन आरिफ नें अपनी शाखा का काम 23 वर्षे किया। वह अपने पिता से बात– बात में भिन्न था।

उसका मानना था कि, धन दौलत इकट्ठा करना अध्यात्मिक मार्ग में बांधा पैदा करता हैं।"[29]उसे अपने बाप से जो धन मिला था वह उसने गरीबो मे बॉट दिया। इस वजह सें बहुत से गरीब लोग उसके संपर्क मे आए, और उसके अनुयायी बन गए। उसका एक मुरीद 'जलालउद्दीन तबरेजी जो जो बंगाल मे सुहरावर्दी मत के प्रचार के लिए गया। लखनौती मे उसने एक लंगर चलाया और अपनी खानकाह स्थापित कि। बंगाल मे पंडूऑ के नजदीक देवतल्ला में एक और खानकाह खोली और लंगर चलाया।'[30] और बंगाल में अपने मत का प्रचार किया। सुहरावर्दी संतो नें पंजाब, बंगाल, और सिंध इलाकें में अपनें मत का प्रचार किया।

चिश्ती सिलसिले और सुहरावर्दी सिलसिले में कुछ भेंद और अंतर था। सुहरावर्दी संत सुलतानो और अमिरों से मेल–जोल रखते थे, परंन्तु चिश्ती संत उनसे परे रहते थे। बहाउद्दीन जकारीया ने सब प्रकार से धन इकट्ठा किया। जो धन चिश्ती संतो को मिलता था वह उसे अपने पास नहीं रखते थे। उसे वे लोगो मे बॉट देते थे। चिश्ती संत आम लोगे से मिलते थे लेकिन सुहरावर्दी आम लोगो से नही मिलते थें। इसलिए लोग सुहारावर्दी संतो से असन्तुष्ट हो गए, इसलिए सुहरावर्दी मत बहूत जादा लोंगो को आकर्षित नही कर सखा। इसलिए सुहरावर्दी संतो की मजारे हमें भारत मे चिश्तीयों के मुकाबले कम मिलती है।

सुहरावर्दी सिलसिले कि एक और शाखा 'फिरदौसी सिलसिला' था, और उसका कार्यक्षेत्र बिहार मे था। इस सिलसिले कों शेख शरीफउद्दीन याहय्या लोकप्रिय बनाया। वह ख्वॉजा निजामउद्दीन फिरदौसी का शिष्य था। उसने इस्लाम कें सिद्धांन्तो का आधुनिकरण किया। उसने इस्लाम के एक ईश्वरवाद कों इस्लाम कें सिद्धान्तो सें मिलाने की कोशिश कि और सुफी साहित्य कि बहुत सी रचनॉए कि, उनमें प्रमुख 'मलफुजात' और 'मकतुबात' है। मलफुजात मुरीदो के पत्रों का संग्रह है, और मकतुबात, मुरीदो और गुरुऔ के बिच में हुए वार्तालाप का संग्रह है।[31] हमे इससे सुफी दर्शन और परंपराओं का ज्ञान मिता हैं। शरीफउद्दीन मनुष्यमात्र कि सेंवा पर बडा जोर देता था। ईश्वर से मिलने का सबसे छोटा रास्ता, निम्न वर्ग के लोंगो कि सहायता करना हैं। इसलिए बिहार मे यह संत काफी लोकप्रिय रहा।

भारतवर्षे में और भी सुफी संत आए, जो भिन्न– भिन्न सिलसिलो से तालुक रखते थें। इनमें से एक सिलसिला कादिरी था, जो बगदाद के शेख अब्दुल कादिर जिलानी ने चलाया था। यह सिलसिला 15 वी शताब्दी मे भारत पहूचा, शहा"न्यामतुल्लाह और मखदुम मुहंम्मद जिलानी ने इसे लोकप्रिय बनाया।"[32] इस सिलसिला भारत के आगरा के इलाखे मे लोकप्रिय रहा। क्योंकि इस सिलसिले का एक संत मुल्लाशहा जो दारा शिकोह का गुरु था, उसने आगरा के इलाके मे कादिरी के विचारो का प्रचार किया। मुल्लाशहा एक कवी और दार्शनिक भी था। कादिरी सिलसिला दुसरे सिलसिलों से इस बात में भिन्न था कि, वह गाने बजाने के विरोधी थे। और दुसरे सिलसिलो मे 'समा' होता था। 'समा' एक सामुहीक संगीत था, जिससे ईश्वर के पास पहूचने का और मन कि शांती प्राप्त करने का सबसे आसान रास्ता समझाा जाता था।

भारतवर्षे मे और एक सुफी सिलसिला था, जिसे 'नक्शाबंदी सिलसिले' के नाम से जाना जाता है। जिसे इस शाखा की स्थापना 14 सदी मे बहाउद्दीन नक्शबंद ने की थी। बाबर के काल में इस सिलसिले को लोकप्रियता प्राप्त होनी प्रारंभ हुई। 'ख्वॉजा वाकी बिल्लाह और शेख अहंमद सरहिंदी ने इस सिलसिले को लोकप्रिय बनाया।[33] इस सिलसिले के अनुयायियों ने शरीयत पर जोर दिया और बाकी बातो का विरोध किया। नक्शाबंदी सिलसिले में समा अर्थात संगीत गोष्ठी के आयोजन को वर्जित किया गया था।

इसके बाद भी बहूत से सुफी सिलसिले भारत मे आए, इनमे कादिरीया, सत्तारी, फिरदौसी सिलसिले दिखाई देते है, किंतू वे अपना प्रभाव न छोड पाये इसलिए और राजसत्ता के विचारो सें मेल न खाने के कारण सुफीमत भारत लुप्तप्राय हो गया।

निष्कर्षः–

भारत मे सुफी विचार 11 वी सदी मे आए, और इन सुफी विचारधाराओं ने भारत के लोगों को प्रभावित किया। सुफी मत ने भारत कें हिंदूओ पर प्रभाव डाला, तथापि प्रारंम्भ मे हिंन्दू सुफीयों से हटकर ही रहे। हो सकता है। हो सकता है कि निम्न वर्ग के लोग सुफी संतो के सम्पर्क मे आये हो, परंन्तु अधिकतर हिंदू उनसे परे हि रहे। प्रारंभ मे सुफी मत ने भारतम में इस्लाम को प्रोत्साहन न दिया, य़द्यपी कई हिंन्दू सुफियों से

प्रभावित हुए तथापि वे लोगो को मुसलमान बनाने मे अशक्त ही रहे। उनके विचार फारसी भाषा में थें, और वह भाषा अधिकांश हिंदूओ के समझ में न आती थी। भाषायी सम्पर्क न होने के कारण सुफीमत और इस्लाम का प्रभाव उपरी तौर पर जितना दिखाई देता हैं, उतना नहि रहा। जिन हिंन्दूओं पर इसका प्रभाव पडा वह स्थाई सिद्ध न हुआ। अधिकांश सुफी संतो ने कुरान शरीफ की शिक्षाओं पर बहूत जोर दिया, किंतू भाषाई संपर्क न होंने के कारण हिंन्दूओ पर इसका प्रभाव नही पड़ा।

भारत में जिस समय सुफीमत आया तब भक्ती अन्दोलन के बुनियादी विचार भारतीय परम्परा में पहले से ही मौजूद रहे है। भारत का सम्पूर्ण उपनिषद् साहित्य रहस्यवाद से ओत–प्रोत है। यही रहस्यवाद के सिद्धान्त सुफीयों ने अलग भाषा मे दिए। भारतीय संस्कृती और साधना के सम्पर्क मे आने पर सुफियों ने इस संस्कृती से बहूत कुछ ग्रहण किया। बाबा फरीद ने पंजाबी साहित्य को अनुठी देन दी। कुतूबन, मंझन, जायसी और नुर मुहम्मद जैसे सुफी कवियों का साहित्य अवधी भाषा में हैं। सुफी मत औंर सुफीयों ने बदलते हुए सामाजिक और धार्मिक वातावरण में रहने की शक्ती प्राप्त की। सुफीयों कें प्रयत्नो का यह फल था कि इस्लाम में उदार और गतिशील तत्वो को प्रेरणा मिली। सूफी संत अधिक से अधिक जनसाधारण के संम्पर्क में आए। भारत में खानकाहो का उदार वातावरण हिन्दु– मुसलमानो को प्यार देने मे सफल रहा। सूफीयों ने अहिंसा और शांती से समस्याएं सुलझााने के लिए जनता को प्रेरणा दी। जनता ध्यान बार–बार भाईचारे की और दिलाया।

सूफी संन्तो ने महत्वपूर्ण काव्य और साहित्य भारत को दिये जो कि अध्यात्मिक रहस्यमय भावनाओ से ओत–प्रोत हैं। सुफी मत के प्रभाव से उर्दु काव्य में मंन्दिर–मस्जिद, हिंदु–मुसलमान आदि का भेदभाव दिखाई नही देता। इसका कारण यह है कि सुफी साहित्य इस्लामी शरीयत का नहीं बल्की मनुष्य मात्र की एकता का प्रतिपादक था। जफर, मिर दर्द, गालिब, आदि उदार कवियो ने अपनी कविताओं में मनुष्य कि वास्तविकता को पहचानने का प्रयत्न किया है।

संदर्भ सूचीः–

1) शर्मा कालूराम, प्रकाश व्यास, मध्यकालीन भारत का राजनैतिक यवं सांस्कृतिक इतिहास, जयपूर, 2004, पृ. 287.
2) यजदानी कौसर, सुफीदर्शन एवं साधना, दिल्ली, पृ. 9.
3) चिटणीस कृ. ना., मध्ययुगीन भारतीय संज्ञा आणि संकल्पना, पुणे, 1986, पृ. 230.
4) Arberry J., Doctrine of Sufis, Cambridge, 1935, p.242.
5) Ibid, p.242.
6) Banerjee A. C. New History of Medival India, New Delhi, 1983, p. 283.
7) शर्मा कालूराम, प्रकाश व्यास, मध्यकालीन भारत का राजनैतिक यवं सांस्कृतिक इतिहास, जयपूर, 2004, पृ. 287.
8) Carpenter J.E., Theism in Medieval India, London, 1926, P.184.
9) Nizami K.A., Some Aspect of Religion and Politics in India During the Thirteen Century, Bombay, 1961, P. 241.
10) Das Gupta S. N., History of Indian Philosophy, Vol 5, Cambridge, 1935 P.32.
11) Arberry J., Loc, Cit, p.243.
12) Carpenter J.E., Loc, Cit, P.185.
13) मिर्झा खिज्र, दखने सुफीमत, शोध निबंध संग्रह, पृ. 353.
14) श्रीवास्तव आशिर्वादीलाल, मध्यकालीन भारतीय संस्कृती, 1983, पृ. 272.
15) उपरोक्त पृ 272.
16) शर्मा कालूराम, प्रकाश व्यास, मध्यकालीन भारत का राजनैतिक यवं सांस्कृतिक इतिहास, जयपूर, 2004, पृ. 288.
17) शेख एजाज, सुफी संप्रदाय, औरंगाबाद, 2009, पृ. 22–23.
18) Nizami K.A., Some Aspect of Religion and Politics in India During the Thirteen Century, Bombay, 1961, P. 241.

19) Ibid P. 242.
20) निकलसन ए. आर., इस्लाम में सुफी साधक, दिल्ली पृ. 18.
21) श्रीवास्तव आशिर्वादीलाल, मध्यकालीन भारतीय संस्कृती, 1983, पृ. 212.
22) मिझार्ा खिज्र, दखने सुफीमत, शोध निबंध संग्रह, पृ. 354.
23) Tarachand, Influence of Islam on Indian Culture, 1956, P. 421.
24) Nizami K.A., Some Aspect of Religion and Politics in India During the Thirteen Century, Bombay, 1961, P. 241.
25) Tarachand, Ibid, P. 422.
26) श्रीवास्तव आशिर्वादीलाल, मध्यकालीन भारतीय संस्कृती, 1983, पृ. 214.
27) उपरोक्त, पृ. 215.
28) शर्मा कालूराम, प्रकाश व्यास, मध्यकालीन भारत का राजनैतिक यवं सांस्कृतिक इतिहास, जयपूर, 2004, पृ. 292.
29) शेख एजाज, सुफी संप्रदाय, औरंगाबाद, 2009, पृ. 177.
30) Nizami K.A., Some Aspect of Religion and Politics in India During the Thirteen Century, Bombay, 1961, P. 245.
31) मिझार्ा खिज्र, दखने सुफीमत, शोध निबंध संग्रह, पृ. 355.
32) Tarachand, Influence of Islam on Indian Culture, 1956, P. 427.
33) Ibid, P.428